कबीरा खड़ा बाजार में : संदेश और उसकी प्रासंगिकता

Dr. D. M. Rathod
Associate Professor in Hindi
Smt. B. V. Dhanak College, Bagasara

कबीर एक व्यक्ति का ही नाम नहीं है, वह कभी समाप्त न होने वाली सतत् संघर्ष चेतना का नाम है, जो हर युग में हर देश में अत्याचार, अनाचार, आडंबर, निरंकुशता, धर्मान्धता,मिथ्याचरण जाति-पाँति, ऊँच-नीच, और ढोंग के विरुद्ध संघर्ष करती रही है और सदा संघर्ष की प्रेरणा देती तथा आह्वान करती रहेगी। वह संत थे, भक्त कवि थे, चिंतक थे, समाज- सुधार और धर्म के क्षेत्र में रूढियों, आडंबरों का विरोध करना उनके जीवन का मिशन था और वह अनेक विरोधों, यातनाओं को झेलते हुए निर्भय होकर अपने मार्ग पर चलते रहे। वस्तुत: वह मानवतावादी थे, मनुष्य मात्र के प्रति समदृष्टि और प्रेम ही उनके जीवन का मूल मंत्र था और इसी दृष्टि का परिणाम है एक और उनका काव्य तथा दूसरी ओर उनका धर्म- सुधारक तथा समाज-सुधारक रूप।

आज विश्व वैज्ञानिक और तकनीकी साधनों उपकरणों की सहायता से पर्याप्त विकास कर चुका है, भौतिक समृद्धि एवं संपन्नता का सागर उनके चरण चूम रहा है और यहाँ पर शांति है ना संतोष। आये दिन शीत युद्ध की खबरें या सैनिक संघर्ष के समाचार अखबारों में छपते रहते हैं। आतंकवादी के कारण रक्तपात होता रहता है। ऐसा क्यों? उत्तर - स्पष्ट है एक और सामाजिक, आर्थिक- राजनीतिक, धार्मिक विसंगतियाँ और दूसरी ओर हमारे जीवन में उदात्तजीवन मूल्यों का ह्रास।

आज हम "वसुधैव कुटुम्बकम्" का सिद्धांत भूल गये हैं। आदमी की पहचान आदमी के रूप में न कर उसके धर्म, उसके वर्ण,उसकी जाति, उसके देश से करते हैं। धर्म, जाति, राष्ट्र, गोरे- काले, ऊँच-नीच की दीवारें हमारे बीच खड़ी हो गई है, अतः ईर्ष्या, वैमनस्य, अंधी विवेकहीन प्रतिस्पर्धा की सभ्यता की आँधी में हमारे पैर उखाड़ रहे हैं और हम आत्मविश्वास के पथ पर चल पड़े हैं। धर्म हमें जोड़ नहीं रहा जैसा कि हमें करना चाहिए, वह भेदभाव फैला रहा है क्योंकि हम धर्म के सच्चे अर्थ को, उसकी वास्तविकता को या तो पहचानते नहीं, या पहचान कर भी उसे झुठला रहे हैं। नाटक में कबीर इस बात से व्यथित हैं- कोई ऐसा धर्माचार नहीं जो इंसान को इंसान के साथ जोड़े, सभी बस इंसान को इंसान से अलग करते हैं, एक को दूसरे के दुश्मन बनाते हैं।"[1]

कबीर के युग में जो विसंगतियां, विकृतियों और मूल्यहीनता थी वह आज भी उन्हीं रूपों में या कुछ बदले रूप में पाई जाती है और उसके कारण हमारे जीवन में सुख-चैन का अभाव तथा अशांति है। मध्य युग में कबीर ने अनेक मोर्चे पर संघर्ष किया था और जनता को आह्वान दिया था कि वह उस संघर्ष में निर्भय होकर आत्म बलिदान के लिए तैयार होकर कूद पड़े—

कबीरा खड़ा बाजार में लिए लुकाती हाथ

जो घर फूंके आपनो चले हमारे साथ।

आज भी उनका संदेश उतना ही प्राणवान एवं सार्थक है कि जितना उनके युग में था क्योंकि संघर्ष के मोर्चे वही है-धर्म के क्षेत्र में अंधविश्वास, रूढियों, बाह्याचार, स्वार्थ, दलबंदी; सामाजिक जीवन में ऊंच-नीच, छुआछूत, जात-पाँत; राजनीतिक क्षेत्र में तानाशाही और आर्थिक क्षेत्र में शोषण। 'कबीरा खड़ा बाजार में' में जगह-जगह कबीर धर्म में व्याप्त बाह्याचार, मिथ्याचरण एवं रूढ़ियों का खंडन करते हैं।

भीष्म साहनी 'कला के लिए कला' के सिद्धांत के अनुयायी नहीं हैं। वह लेखन को सोदेश्य मानते हैं और रचना की सफलता भी इसी में मानते हैं कि उसे पढ़ने के बाद पाठक की मानसिकता में बदलाव लिए,"[2] पढ़ने के बाद आप वही आदमी नहीं रह जाते जो उसे पढ़ने से पहले होते हैं। वह

आपको उत्पीड़त मनुष्य की व्यथा और वेदना का अनुभव कर देता है तब क्या साहित्य मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने वाली, उन्हें एक करने वाली शक्ति नहीं है?"[3] हाँ, यह भी मानते हैं, "साहित्य कभी तटस्थत नहीं होता वह हमेशा पक्षधर होता है। लेकिन वह उसका पक्ष लेता है जो उत्पीड़ित है, अन्याय, धर्मान्धता या संकीर्णता के शिकार होते हैं।"[4] उनकी दृष्टि में सद् साहित्य वह है जो लोगों को बाँटे नहीं, बल्कि उन्हें एक करने में योगदान दे। वह साहित्य को धार्मिक पक्षपात , सांप्रदायिक विद्वेष के जहर से दूर रखने की आशंका व्यक्त करते हुए कहते हैं, "ईश्वर में गहन आस्था रखने वाला कभी भी अत्यंत धर्मनिरपेक्ष हो सकता है दरअसल समस्त गंभीर साहित्य स्वभावत: ही धर्मनिरपेक्ष होता है और इसीलिए वह समाज को धर्मनिरपेक्ष बनाने वाला असर रखता है"[5]

प्रतिवादी विचारधारा यह मानती है कि समस्त मानव समाज दो वर्गों में बँटा है-शक्ति संपन्न, उत्पादन के साधनों पर जिनका अधिकार है तथा सर्वहारा वर्ग जिसके पास शारीरिक शक्ति ही उसकी पूंजी है, जो उत्पादन करता है, पर उत्पादन का प्रतिफल उसे उतना नहीं मिलता जितना मिलना चाहिए था अतः उसे जीवन भर संघर्ष करना पड़ता है। परंतु परंपरावादी धर्म, भाग्यवाद, कर्मफल आदि के नाम पर उसके संघर्ष की शक्ति को कम करते रहते हैं।

प्रगतिशील चिंतन का आधार भले ही मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धांत हो पर उसमें मानव प्रेम या कहिए मानवतावाद पूरी तरह भरा है। भीष्म साहनी लिखते हैं, नैतिक मूल्यों का मानवतावाद से घनिष्ठ संबंध होता है। यही नहीं वे मानवतावाद से ही उत्पन्न होते हैं। प्रस्तुत नाटक में लेखक कबीर के माध्यम से मानव प्रेम और समानता की भावनाओं की प्रतिष्ठा पर बल देता है जो उसकी मानवतावादी दृष्टि का सूचक है।

प्रगतिशिल चिंतन मानव मानव के बीच किसी प्रकार का भी भेद स्वीकार नहीं करता। धर्म, जाति, वर्ण, रंग, अर्थ विभाजन की दृष्टि से जो भी भेदभाव है—जांत- पांत, अमीर -गरीब, ब्राह्मण- शुद्र, काला-गोरा उन सबका तिरस्कार ही नहीं विरोध भी करता है। प्रस्तुत नाटक का नायक कबीर भी इस भेदभाव का विरोध करता है और इस भेदभाव के कारण जो पारस्परिक वैमनस्य उत्पन्न होता है उसका बिभस्त चित्र प्रस्तुत करता है।

जनता का शोषण करने वाली प्रमुख शक्तियां तीन है-शासक, धर्मगुरु तथा उत्पादन के साधनों पर एकधिपत्य रखने वाले जमींदार और उद्योगपति। कबीर के युग में शोषण करने वाली पहली दो शक्तियां ही प्रधान थी—शासक वर्ग तथा धर्मगुरु। आर्थिक वैमनस्य था पर उसका कारण ये ही दो थे। कबीर कहता है, जुलाहों की यही खूबी है बादशाह सलामत, लोगों को चिथड़े भी नसीब नहीं हो जाए, गनी मत है...किसी के आँसू दूसरे के लिए मोती जुटा देते हैं और उसके अपने लिए चिथड़े भी नहीं जुटा पाते।"[6] शासक वर्ग कभी नहीं चाहता कि शोषित वर्ग में एकता हो, वे परस्पर संगठित हों और शोषक के विरुद्ध संघर्ष करने की बात भी सोचें। इसलिए कोतवाल कबीर के पद गाने वाले अंधे भिखारी को कोड़े मारने की सजा देता है ताकि और लोग उस कठोर दंड की बात सुनकर उसे रास्ते पर न चलें।

कबीर का युग भी ढोंग, बाह्याचार अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों के अंधकार से आच्छन्न था। इन प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जिस अपार साहस के साथ उन्होंने अपने विरोधियों से संघर्ष करते हुए तत्त्व-चिंतन की गूढ गंभीर बातें कहीं, जनता का मार्गदर्शन किया उसे देखकर लगता है कि इस सब का कारण उनके पूर्व जन्म के संस्कार ही थे। बचपन में ही संसार से विरोक्ति का भाव होना 'मसी कागद छुओ नहीं, कलम गहीं नहीं हाथ' वाला जुलाहा यदि गूढ़ तत्त्व-चिंतन की बातें कहता है कविता लिखता है मधुर स्वर में पद गा-गाकर जनता को रिझा सकता है, तो उसे संस्कारी पुरुष ही समझना चाहिए। यह ठीक है कि साधु संगति तथा गुरु के प्रवचनों से उसे सहायता मिली होगी पर उनके वचन भी तो उसके हृदय के भावों और विचारों की प्रतिध्वनि मात्र थे, वह मेरे दिल की बात कहते हैं।

कबीर का मन जिज्ञासु है, जिज्ञासा भी साधारण सांसारिक विषयों के संबंध में नहीं, जीवन, जगत, सृष्टि के

रहस्य को जानने की-मेरा दिल छलनी हो रहा है...मेरी भटकन कब खत्म होगी...मुझे अंधेरे में रोशनी चाहिए। माँ की बातें सुनकर कहता है, मेरे मन में सवाल उठे तो पूछूँ भी नहीं...अपने प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए ही साधु-फकीरों से मिलता है, उनके सामने अपने प्रश्न रखता है और संतोषजनक उत्तर न पाने पर झगड़ता है। फक्कड़पन, अभय भावना, दृढ़ता, स्पष्टवादिता कबीर के चरित्र के अन्य गुण है। उनके ये गुण भी संस्कारगत थे। इनका उन्होंने अर्जन या संपादन नहीं किया था। फक्कड़पन स्वभाव के कारण वह घर के, माता-पिता के स्नेह को छोड़कर जंगलों, तीर्थ स्थानों पर भागे, फकीरों तथा साधुओं के साथ अपना अधिकांश समय बिताते थे और घर से थान बेचने निकलते और बाजार में जाकर मित्रों या साधारण लोगों को जमा कर अपना फकीराना दरबार लगाते, घंटों अपने निगोड़े साथियों के साथ बैठकबाजी करता फिरता है। जहाँ देखो कबीर का दरबार लगा है। उसकी ऐसी आदत को देख पड़ोसी जुलाहा करीमुद्दीन कहता है, इसका ब्याह कर दो, अपने आप पैरों में बेड़ियां पड़ जाएगी। अपने फक्कड़पन और मस्तमौला स्वभाव के कारण ही मुँहफट है, सबको आड़े हाथों लेता है, न मुल्ला को बख्शता है न पंडितों को। और वह स्वयं को भी नहीं बख्शता।

कबीर निर्भय है अतः उसे न प्रलोभन और न भय अपने मार्ग से विचलित कर पाते हैं। कायस्थ उसे राज्य कवि बनवाने का प्रलोभन देता है उसकी काव्य प्रतिभा की भूरि-भूरि प्रशंसा भी करता है और जब इस चाटुकारिता एवं प्रलोभन का वांछित प्रभाव नहीं होता तो चेतावनी भी देता है, अभी भी वक्त है, संभल जाओ। तुम्हारी हैसियत भी क्या है? पर कबीर अडिग रहता है और अपना संकल्प दुहराता है "सत्संग तो लगेगा साहिब।" सिकंदर बादशाह के सामने भी नहीं झुकता, अपने मन और अपने सिद्धांतों पर अडिग रहता है। कबीर किसी निरीह, निरपराध और दिन- हिन व्यक्ति पर अत्याचार होते नहीं देख सकता। अत्याचार होते देख एक और अत्याचारी का विरोध करता है और दूसरी ओर निरीह व्यक्ति के प्रति उसके हृदय से करुणा का स्रोत प्रवाहित होने लगता है।

कबीर के चरित्र की इन सब विशेषताओं का मूलाधार था उनका मानवतावाद, प्राणी मात्र के प्रति प्रेम, दया, करुणा, परोपकार, सहानुभूति सदाशयता, सर्वधर्मसमभाव आदि उनके मानवतावादी दृष्टिकोण रूपी पौधे पर खिले हुए रंग-बिरंगे सुवासित पुष्प थे। वह हर नेक काम को इबादत, ईश्वर की पूजा मानते हैं, इंसान की खिदमत करना उसे सुखी बनाना इबादत है। "मैं अल्लाह का नूर हूँ हर इंसान में देखता हूँ। मैं इंसान को हिंदू और तुर्क की नज़र से नहीं देखता, मैं उसे केवल इंसान की नज़र से खुदा के बंदे की नज़र से देखता हूँ।"[7]

आरंभ में कबीर विरक्त थे, जंगलों या तीर्थ स्थानों में रहकर ईश्वर उपासना को महत्त्व देते थे और ऐसा करने के लिए घर से भागे भी थे, पर धीरे-धीरे आत्म-चिंतन, आत्म-विश्लेषण तथा अपने गुरु के प्रवचन सुनकर उनका विश्वास बढ़ता गया कि ईश्वर आराधना के लिए जंगलों में भटकना, मूर्ति पूजन, नमाज़-रोज़ा, व्रत -उपवास जटाएं रखना, माला फेरना बेकार है। घर-गृहस्थी बसाकर मानव जाति की सेवा करने से भी ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। पहले अपनी पत्नी लोई से कहता है, "जब मैं जान गया हूँ कि घर में रहकर ही सच्ची भक्ति हो सकती है। जोग, जप-तप सब। घर ही में सच्ची साधना हो सकती है।" नाटक के अंत में वह बादशाह सिकंदर लोदी से भी यही बात कहता है, मेरी फकीरी के लिए घर-बाहर छोड़ने की जरूरत नहीं है। मेरी नज़र में हर काम इबादत है इंसान की खिदमत करना, उसे सुखी बनाना इबादत है।

कबीर में पुराने संस्कारों के बीज अवश्य है, पर वह कुल मिलाकर सामान्य मानव है-बचपन में अपनी माँ से अगाध प्रेम करता है। यदि कभी माँ उलाहना या रुष्ट हो जाती है तो कबीर अपनी माँ की दुर्बल काया को बाहों में भरकर रिरियाता है, बिगड़ गई माँ? मुझे घर से निकल रही हो माँ? गोद लिए बालक को भी कोई निकलता है। उसे अपनी माँ की ममता की गहराई का पूरा एहसास है अतः वह अपने मित्रों से प्रायः कहा करता है, करतार ने माई को कैसा बनाया है। ना मैं उसका बेटा, न वह मेरी माई; फिर भी सारा वक्त

वह मुझे अपनी छांव में लिए रहती है। माई के दिल में जैसे कोई बाती जलती रहती है, प्रेम की बाती। उसी की लौ में वह सारा वक्त जीती है।

पति के रूप में भी कवि एक उदार, प्रेमल तथा कर्तव्य निष्ठ पुरुष है। नवविवाहिता पत्नी के रूप-लावण्य की प्रशंसा करता है, तू घर में आ गई है तो लगता है झोपड़े में उजाला हो गया है। पत्नी जब बहुत देर तक मौन रहने के बाद कुछ बोलती है तो उसे परिहास भी करता है, 'ओ बोली तो! मैं समझ बैठा था लोई गूंगी है। कबीर सामान्य पुरुषों की तरह ईर्ष्यालु, असहिष्णुता एवं शीघ्रक्रोधी नहीं है। उसका हृदय उदार है। कबीर के चरित्र में कतिपय पर अन्य गुण भी थे, वह व्युत्पन्नमति तथा हाजिरजवाबी था। नव विवाहित पत्नी लोई से विनोदप्रिय बातचीत करते समय या फिर बादशाह सिकंदर से तर्क वितर्क,वह इन गुणों का परिचय देता है। पत्नी से विनोद करते समय कहता है, तेरे हाथ से दूध पिया, तभी तो में बच गया। बादशाह एक और उसकी हाजिरजवाबी की प्रशंसा करता है, बड़े हाजिरजवाबी हो, बड़ी पैनी बात कही है, समझदार आदमी मालूम होते हो, और दूसरी और उसे निर्भय होकर अपनी बात कहते देख उसके साहस की दाद देता है, तुम पहले इंसान हो जो हमारे सामने इस तरह बोलने की जरूरत कर रहे हो। लेकिन हम तुम्हारे साथ नर्मी से पेश आएंगे।

कबीर जन्मजात कवि था, कविता बोलने का वरदान उसे स्वयं था। उसका कंठ भी मधुर था। अतः एक और वह खड्डी पर कपड़ा बुनते थे और साथ ही खड्डी की लय के साथ स्वत: उनके मुख से कवित फूट पड़ते थे। जब वह अपना इकतारा लेकर अपने पद कहते थे तो भीड इक्कठी हो जाती थी, सत्संग का रंग खूब जमता था, और भक्तगण आत्मविभोर होकर उनके पद को गा-गाकर समा बांध देते थे। विरोधी भी उनके पदों तथा मधुर कंठ-स्वर की प्रशंसा करते। सामान्य जन को तो उनके पद कंठस्थ हो गए थे।

कबीर साहित्य का उद्देश्य:

कबीर साहित्य संत कबीर के निजी अनुभव और अनुभव से प्राप्त आधारित है। तत्कालीन, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांप्रदायिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर जन कल्याण की भावना से उनके मुख से जो उद्गार, सिख, उपदेश या चेतावनी निकली वही कबीर साहित्य के नाम से प्रचलित है।

कबीर ने जो कुछ भी कहा वह समाज के कल्याण के लिए, देश की प्रगति के लिए और मानव जाति की भलाई के लिए। अनेक साहित्यकारों ने उन पर अक्खड़, फक्कड़, मस्तमौला होने का दोषारोपण किया है, लेकिन निष्पक्ष रूप से देखने पर आज यह बात स्पष्ट रूप से समझ में आ जाती है कि कबीर जैसा जनता का हितैषी, निस्वार्थ भाव से लोकमंगल के चिंतन में संलग्न मानव का मिलना दुर्लभ है। अध्ययन से पता चलता है कि बहुत से कवि, लेखक, आलोचक भी कबीर से प्रभावित थे।

संदर्भ सूची:

1. साहनी, भीष्म, कबीरा खड़ा बाजार में, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1995- पृ.51
2. सुशीला सिंन्हा, लौह पुरुष कबीर, संजय प्रकाशन दिल्ली, 2001- पृ. 25
3. शर्मा, राजकुमार, कबीर ग्रंथावली, कोलेज बुक डिपो, जयपुर, 2008, पृ. 56
4. साहनी, भीष्म, कबीरा खड़ा बाजार में, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1995- पृ. 93
5. वही, पृ. 37
6. वही, पृ. 47
7. वही, पृ. 26